P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

लोक संस्कृति में "कालीघाट"

आभा गुप्ता
सहायक प्राध्यापक,
चित्रकला विभाग,
महिला महाविद्यालय,
कानपुर, उ0प्र0, भारत

सारांश

लोक कला जन साधारण की भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति है। सभ्यता के विकास के क्रम में जहाँ एक ओर वह आदिम कला से जुड़ी रही हैं, वहीं दूसरी ओर सुसंस्कृत कला के मध्य स्थित रही है। इस कला को मुख्यतः ग्रामीण जनता से सम्बन्धित किया जाता है क्योंकि वस्तुतः इस कला को आगे बढ़ाने का कार्य ग्रामीण जनता ने ही किया है।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा संस्कृति से अपनी परम्पराओं को प्राप्त करती हुई यह लोक कला आज भी हमारे पारिवारिक, संस्कृति एवं धार्मिक जीवन की परम्पराओं के साथ सम्बद्ध होकर, हमारे बौद्धिक धरातल को स्पर्श किये बिना हमारे आँगनों में पलती हुई आगे बढ़ती रही है।

लोक कला सदैव लोक–मानस से प्रेरणा और पोषण प्राप्त करती रही है जिसमें जन–साधारण के सहज आनन्द से परिपूर्ण, सरल स्वच्छंद और परम्परागत रूपों की अभिव्यक्ति होती है।

प्राचीन परम्पराओं को अक्षुण्ण रखने वाली कला है। लोक कला सदैव ही अपने परम्परागत विश्वासों, धारणाओं, आस्थाओं, रहस्यात्मक संकेतों और अतीत की प्रेरणा पर आधारित होती है। इसका प्रादुर्भाव समाज के रीति–रिवाजों पर आधारित रहता है।

अतः इसका स्वरूप धार्मिक व सामाजिक रीति–रिवाजों, अतिथि आगमन, धार्मिक–पूजापाठ, अनुष्ठान, मनोरंजन के साधनों, जन्म, विवाह एवं मृत्यु आदि संस्कारों तथा फसल के उत्सवों आदि में विकसित होता दिखाई देता है।

मुख्य शब्द : लोक कला 'फिरका', 'संस्कृति', 'कालीघाट', 'बाजार शैली', 'पटुआ चित्र' कलकत्ता शैली बंगाल की लोक कला आदि।

प्रस्तावना

लोक कला की सौंदर्यात्मक अनुभूतियाँ, चेष्टायें, भावनायें, मनोवृत्तियाँ लोक जीवन के साथ घुली मिली रहती है। यह कला बिना किसी प्रलोभन, आश्रय, संकेत अथवा शिक्षा के निरन्तर आगे बढ़ती रही है। जहाँ एक ओर इसमें बाल–सुलभ सहजता है तो वहीं दूसरी ओर आदिम समाज की सामाजिकता भी है। शास्त्रीय कला का गम्भीर चिन्तन इसमें नजर नहीं आता है। इसका सर्वांगीण विकास हमें घरेलू जीवन में ही मिल जाता है।

इस प्रकार 'लोक' शब्द को प्रतिबिम्बित करने वाली यह कला इसी मानव समूह की भावनाओं को सहज प्रतिरूप है, जो उसकी सौन्दर्यानुभूति और मांगलिक भावनाओं के प्रतीक रूप में अभिव्यक्त होती रही है। लोक –मानस के हृदय की सरलता व सुबोधता लोक कला के प्राण हैं। लोक –कला के सौन्दर्य–विधान की समाज के बहु–संख्यक लोग सहज श्वांस की तरह ही स्वीकारते चलते हैं। लोक कलायें प्रमुख रूप से स्थानीय ही होती हैं। स्थानीय परम्पराओं की दृढ़ता के कारण इस कला में प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री भी प्रमुखतया स्थानीय व आंचलिक ही होती हैं।

ये लोक–कलाकृतियाँ लोक–सापेक्ष होती हैं। उसमें निहित भावनायें किसी एक व्यक्ति से सम्बन्धित न होकर समस्त समाज से सम्बन्धित होती हैं। लोक कलाकार ऐसे वातावरण में कार्य करता है जहाँ उसकी परम्पराओं का कोर्ट प्रतिद्वन्द्वी नहीं होता है। लोक कलाओं पर बाह्य प्रभाव न के बराबर ही होते हैं।

अतः यह कलायें अकृत्रिम ही बनी रहती हैं। इस कला में परिपेक्ष्य अथवा स्थगत दूरी का कोई विचार नहीं किया जाता और न ही संयोजन की कोई विशेष निश्चित पद्धति होती है। कला कलाओं के अभिप्राय बार–बार प्रयोग में लाये जाते हैं। तथापि ये कलायें मात्र अनुकरण नहीं होती, अपितु इसमें मौलिक शैलियाँ भी विकास पाती हैं। जहाँ मौलिकता के साथ–साथ समाज में प्रचलित धारणाओं का भी ध्यान रखा जाता है। इसी प्रकार लोक कला किसी माध्यम विशेष में बंधी नहीं रहती और लोक कलाकार आकृति, माध्यम तथा

तकनीक की दृष्टि से पूर्ण स्वतंत्र होता है।

अध्ययन का उद्देश्य

भारतीय लोक संस्कृति में कालीघाट के चित्रों का विश्लेषात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना।

प्राकल्पना

भारतीय लोक संस्कृति में कालीघाट के चित्रों का विश्लेषात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना जिसमें बंगाल की लोक कला या पटुआ चित्रों के विषय में अध्ययन करना है।

सैद्धान्तिक आधार

ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति की सहायता से शोध के निष्कर्षों को प्राप्त करना जिसमें प्राप्त द्वितीय स्रोतों की सहायता से प्राक्कल्पना की प्राप्ति करना व उद्देश्य को प्राप्त करना।

संदर्भित शोध की उपादेयता

1. भारतीय चित्रकला में बंगाल के लोक चित्रों का अपना एक अलग स्थान है जिसे कलकत्ता शैली कालीघाट के चित्र या बाजार शैली के नाम से भी जाना जाता है। इसे स्थानीय लोग इन चित्रों को 'पटुआ' चित्र के नाम से भी पुकारते हैं।
   ये चित्र मुख्य रूप में स्थानीय लोक संस्कृति का एक भाग है, जिसे संस्कृति उत्सवों, धार्मिक अनुष्ठानों और दैनिक जीवन की झलक दिखाई देती है।
2. भारत–वर्ष में लोक–कला को जीवित बनाये रखने का श्रेय यहाँ के नारी समाज को जाता है, जो व्रत उपवास, उत्सव, त्यौहारों एवं धार्मिक अनुष्ठानों पर अपने घर–परिवार के लिए अनेक मंगल कामनायें करती हैं। इन सभी मांगलिक अवसरों पर अनेक कलायें विकसित होती चली गयी हैं। इन्होंने धरती के प्रति अपनी पवित्र निष्ठा को बनाये रखते हुए भूमि अलंकरण के रूप में हमें सुन्दर लोक–कलाकृतियाँ प्रदान की हैं। यद्यपि विभिन्न प्रान्तों में लोक– कला के इन भूमि चित्रों को अनेक नामों से जाना जाता है। इन भूमि अलंकरणों को महाराष्ट्र में "रंगोली", गुजरात में "साथिया", राजस्थान में "माँडणा" उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में "सोन रखना" और कुछ में "चौक पूरना" कहा जाता है।

अल्मोड़ा तथा गढ़वाल में "आपना", बिहार में "अहपन" और बंगाल में "अल्पना" कहा जाता है। पर्व त्यौहारों तथा विवाह आदि के समय मंगलमय चिन्हों को दीवारों तथा आँगनों पर अंकित करने की प्रथा बहुत प्राचीन है।

विषय चयन

भारतीय कला के इतिहास में लोक कला का अलग धरातल है जिसमें विभिन्न स्थानों की अपनी एक स्थानीय लोक कला है। इन लोक कलाओं में बंगाल की लोक कला का अलग स्थान है इसके चित्रों को कालीघाट के चित्र या पटुआ कला के नाम से भी जाना जाता है।

इस विषय के माध्यम से बंगाल की लोक कला को जन मानस में पुनः लाना ही मेरा उद्देश्य है।

कालीघाट के चित्रों की विशेषताएँ

लोक कला का एक अन्य रूप पट–चित्रण हैं। पट्–चित्रण परम्परा भारत के अनेक प्रान्तों में देखने को मिलती है। जैसे–बंगाल, राजस्थान, बिहार, महाराष्ट्र, उड़ीसा, मद्रास आदि।

बंगाल के पट चित्रों को "पटुआ" चित्र के नाम से पुकारा जाता है। राजस्थान के पट–चित्रण परम्परा को "पाबूजी की पड़" भी कहा जाता है और इसी प्रकार से बिहार में "मधुबनी" के नाम से जाना जाता है। महाराष्ट्र से प्राप्त पट चित्रों को "काथी–चित्र" कहा जाता है। मद्रास में पट चित्रों को "कलमकारी" कहा जाता है।

यहाँ पर हमने बंगाल के पट चित्रों को मुख्य विषय के रूप में लिया है जो 'कालीघाट शैली' के नाम से भी जानी जाती है।

बंगाल के पट–चित्र व कालीघाट शैली (1800–1930)

बंगाल के पट–चित्रों का सम्बन्ध प्रतिदिन के प्रयोगों से रहा है। इसे पटुआ कला के नाम से जाना जाता है। पटुआ कला अंग्रेजों के आगमन तथा कलकत्ता बसने से पूर्व की है। ग्राम बाँकुड़ा पट–चित्रों के लिए प्रसिद्ध रहा है।

ये चित्र टेम्परा में गहरे व भड़कीले रंगों से बनाये जाते थे, रेखांकन मोटा व गतिशील होता था जिसके आस–पास गहरी छाया लगाई जाती थी।

चित्र के पार्श्वभूमि को अलंकृत नहीं किया जाता था। चित्र फलक के रूप में कागज, कपड़े या कपड़े चिपके कागज तथा केनवास का प्रयोग करते थे। परम्परागत विधि में टाट पर गोबर व मिट्टी का छना हुआ गाढ़ा लेप लगाकर सुखा लिया जाता था। सूखने पर इसे घोंट कर चिकना कर चित्रण करते थे तथा एक घिरी पर लपेट लिया जाता था। यह खर्रा पटवा कहलाता था और इनको बनाने वाले पटुआ कहलाते थे। यह बंगाल की लोककला के रूप में जानी जाती है।

कलकत्ता शहर बसने के पश्चात कुछ पटुआ कलाकार कालीघाट में जाकर बस गये। पटना से मुगल शैली तथा मुर्शिदाबाद से कम्पनी शैली के इन कलाकारों के आने से पटुआ कला का रूप परिष्कृत होने लगा। यह शैली कालीघाट शैली के नाम से जानी जाने लगी। इस शैली का विकास कलकत्ता में प्रसिद्ध काली मन्दिर से 1800 ई0 से 1930 ई0 तक जुड़ा रहा। उस समय बंगाल में काली की आराधना का महत्व शिव पूजा से अधिक था। भक्तगण धार्मिक भावना से ओत–प्रोत होकर पट चित्रों को क्रय करते थे। फलस्वरूप इस चित्रण परम्परा को प्रोत्साहन मिला तथा पद्धति में भी परिवर्तन होने लगा।

मूल भावना का लोप होने के साथ यॉंत्रिक पुनरावृत्ति तथा व्यवसायिकता का समावेश होने लगा। राम, कृष्ण, महाभारत, काली, शक्ति एवं देवी के विविध रूपों तथा अन्य धार्मिक आख्यानों के अतिरिक्त वेश्यावृत्ति, पान चबाते, मदिरा पान, पति–पत्नी का मन–मुटाव, कामुक दृश्य, बंगाली युवतियों का श्रृंगार, मछली पकड़ने आदि दृश्यों के साथ हास्य तथा व्यंग्य विषयों का भी कालीघाट कलाकारों ने आकर्षक व चटकीले रंगों में चित्रण किया।

निष्कर्ष

यह बाजार शैली के नाम से भी जानी गयी क्योंकि इसमें विषयवस्तु मात्र धार्मिक ही नहीं थे। इसमें बाद में ऐसे विषय चित्रित होने लगे थे जिनका बाजार में

अधिक प्रचलन था। ये चित्र टेम्परा माध्यम में मोटी व गतिशील रेखाओं से गहरे चटक रंगों में चित्रित किये जाते थे तथा शीघ्रता से छाया लगाकर पूर्ण करते थे।

पार्श्वभूमि को किसी भी प्रकार के रूप में चित्रित किये जाते थे तथा शीघ्रता से छाया लगाकर पूर्ण करते थे। इन चित्रों के सैट्स भी तैयार किये जाते थे जिन्हें 'फिरका' कहा जाता था। इस शैली के कुछ चित्रकारों एन0सी0 घोष, के0सी0 घोष, नीलमणि दास, गोपालदास, पाल तथा वैरागी के नाम उपलब्ध हैं।

1947 ई0 में स्टयार्ड किपलिंग ने कालीघाट के कुछ चित्र "विक्टोरिया एण्ड एलबर्ट म्यूजियम" लन्दन को भेंट किये जिनके आधार पर कला मर्मज्ञ अजीत घोष ने शोध लेख प्रकाशित किये। मुकुलज चन्द्र डे का लेख "ड्राइंग्स एण्ड पेन्टिंग्स ऑफ कालीघाट" 1941 ई0 में ए0के0 मुकर्जी का शोध पत्र "कालीघाट फोक पेन्टर्स" 1971 ई0 में डब्लू जी आर्चर की पुस्तक "कालीघाट पेंटिंग्स" आदि प्रकाशित हुए। भारत की प्रसिद्ध कला पत्रिका "मार्ग" का भी एक अंक पूर्णतः कालीघाट के चित्रों को ही समर्पित रहा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधुनिक भारतीय चित्रकला, डा0 गिरीज किशोर अग्रवाल, षष्ठम् संस्करण–2007 संजय पब्लिकेशंस, शैक्षिक पुस्तक प्रकाशक, आनन्द काम्प्लेक्स, किदवई पार्क, राजामण्डी, आगरा–2

कला विलास भारतीय चित्रकला का विवेचन, डा0 आर0ए0 अग्रवाल, संस्करण–2000 इण्टर– नेशनल पब्लिशिंक हाउस, मेरठ–250001

बुन्देलखण्ड की लोकचित्र कला, श्रीमती मधु श्रीवास्तव, प्रथम संस्करण मार्च, 2002, निदेशक, उत्तर मध्य क्षेत्र

भारतीय कला और संस्कृति, मुख्य सम्पादक– गोविन्द नन्द पाण्डे, सम्पादक– उदय शंकर तिवारी, प्रथम संस्करण–1995 राका प्रकाशन, 40ए, मोती लाल नेहरू रोड, इलाहाबाद–211002

भारतीय लोक माध्यम, महेन्द्र भानावत्, श्रीकृष्ण 'जुगनू', प्रमि संस्करण–2007 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं0 1, झालना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर–302004

भारत की चित्रकला, डा0 दिनेश चन्द्र गुप्त, संस्करण–2005 धर्मा प्रकाशन, 355ए/1, सावित्री पार्क, मधवापुर, बैरहाना, इलाहाबाद –211003

भारत की समकालीन कला– एक परिप्रेक्ष्य, प्राणनाथ मागी अनुवाद सौमित्र मोहन, पहला संस्करण–2006, निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, ए–5, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली–110016

विन्ध्य क्षेत्र की लोक चित्रकला, नन्दिता शर्मा, प्रथम संस्करण–1994, किताबघर 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

राजस्थान की ग्रामीण कलाएं एवं कलाकार, गुलाब कोठारी, जवाहर कला केन्द्र, जयपुर–1997, मुद्रक जयपुर प्रिन्टर्स प्रा0लि0, एम0आई0, जयपुर– 302 001